Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. V, Issue IX, January-2013, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

मलयज का सांस्कृतिक के प्रति दृष्टिकोण

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. V, Issue IX, January-2013, ISSN 2230-7540

मलयज का सांस्कृतिक के प्रति दृष्टिकोण

Dr. Meenakshi Kajal

Asst. Prof. Hindi CRM Jaat College, Hisar, Haryana

---------------------------------x---------------------------------

मलयज ने 'संस्कृति' को मानवीय मूल्यों के साथ जोड़ते हुए एक नया आयाम प्रदान किया है। केवल संस्कृति ही नहीं बल्कि मूल्य–विघटन की स्थिति में उन्होंने संस्कृति में नयापन उत्पन्न होने की स्थिति को भी विश्लेषित किया है। फ्संस्कृति मूल्यों की चेतना का संश्लिष्ट नाम है। एक संस्कृति तभी एक जीवित मानी जाएगी जब तक वह हमें मानव–मूल्यों के प्रति आश्वस्त करती है। वस्तुतः मूल्यों की चेतना और युग जीवन के सह–संबंध का नाम ही संस्कृति है। ध्वस्त संस्कृति मूल्य के विघटन की स्थिति है। बिखरे हुए नए उठते हुए मूल्यों का पुनः संगठन नई संस्कृति का जन्म कहलाता है। इसे 'तम.वतपमदजंजपवद व बिनसजनतम' भी कह सकते हैं।य्1 इस पुनर्गठन के लिए भी उन्होंने विशिष्ट व नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। जीवन के किसी एक रूप का सरलीकरण वे मात्रा सकारात्मक कदम मानते हैं। बल्कि जीवन के विश्रृंखलित रूपों का नए से पुनर्गठन वे वास्तविक रूप से सांस्कृतिक पुनः संगठन मानते हैं। वे मूल्य–रचना और संस्कृति के पुनर्गठन को आपस में सह संबंधित होना स्वीकारते हैं।

मलयज ने अपनी रचनाओं में संस्कृति के प्रति स्नेहपूर्ण भावना व्यक्त की है, उसके प्रति श्र(ा दिखाई है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के सुन्दर रूप की प्रस्तुति की है। उन्होंने संस्कृति के इस स्वस्थ सौन्दर्य को विभिन्न त्यौहारों एवं पर्वों का सही अर्थ मानते हुए और स्पष्ट करते हुए व्याख्यायित किया है। 'होली' को वे सुख और समृ(का त्यौहार मानते हैं। भारतीय सांस्कृतिक त्यौहार मानव में आशा व उल्लास उत्पन्न करते हैं–

फ्होली!

सुख–समृ(!

प्रेम की शुचि–सरित!

आशा की पुलक का मापदंड!

अमर भविष्य की स्वर्णिम रेखा।य्2

इसे कवि मलयज ने कटुता व शत्राुता का नाश करने वाली कहा है। यह मानव–प्रेम उत्पन्न करती है। मानवता से परिपूर्ण उद्देश्य वाला यह पर्व संस्कृति के उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक है। इसी कारण कवि इसे संस्कृति की पोषिका मानते हैं। यह संस्कृति के विकास में योगदान देती है।

'होलिका–दहन' को वे विश्व के लिए नई आशा रूपी वरदान मानते हैं। यह पर्व प्रकृति और मानव दोनों को सुख, हर्ष व उल्लास प्रदान करता है। अपनी कविता '। कतमंउ व भ्वसज' में मलयज ने इसका हार्दिक व आत्मिक रूप से अभिनन्दन किया है। इसे मानवता का लक्ष्य माना है।

फ्मसबवउम व जीम फनममद व बिंतउ!

ॅमसबवउम ूपजी ीमंतज ंदक ेवनस

भ्वसल े जीम रवल व जीम डवतद

व जीम भ्नउमदपजलश्े हवंसण्य्3

भारतीय संस्कृति में त्यौहारों का महत्त्व अत्यधिक रहा है जिसे अस्वीकारा नहीं जा सकता। आज चाहे जितनी भी आधुनिकता क्यों न आ गई हो, परन्तु दशहरा जैसे त्यौहारों को प्राचीन समय की तरह झांकियों द्वारा मनाए जाते हैं। इन त्यौहारों का बालक–मन और युवा मन पर प्रभाव अवश्य ही पड़ता है चाहे उस प्रभाव में अन्तर भी हो। फ्दशहरा आता, मन में उमंगें किसी भी साधारण बालक के हृश्य की भाँति उठतीं, एक प्रकार की चंचल खुशी होती और जब दशहरा की झांकी समाप्त हो जाती तो पिफर जीवन पूर्वतः अपने पुराने रंग पर चलने लगता। स्पष्ट है–तब दशहरा और राम–दर्शन का मेरे लिए कोई स्थायी मूल्य न था। बाद में शायद उस खुशी की कल्पना करना भी व्यर्थ मालूम होता होगा। परन्तु अब जबकि मेरी चेतना जग चुकी है। ;यद्यपि यह पूर्णतः सत्य नहीं हैद्ध, अपनी दुर्बलताओं का ज्ञान मुझे किन्हीं अंशों में हो चुका है।य्4

ये त्यौहार मानव के बौ(िक एवं वैचारिक विकास में योगदान देते हैं। विजयदशमी जैसे त्यौहारों में लेखक का मन अध्यात्म की ओर उन्मुख हो जाता है। ऐसा केवल लेखक के साथ ही नहीं बल्कि सभी के साथ होता है। लेखक ने यहाँ पर्व–संस्कृति के प्रति मानव–समाज की सहज व स्वाभाविक अनुभूति प्रदर्शित की है।

लेखक मुहुई गाँव से संबंधित थे। महानगर में आने के बाद भी वे वहाँ के संस्कारों, रीति–रिवाजों को नहीं भूले थे। गाँव में छोटी–छोटी खुशियों को भी पूर्ण श्र(ा से मनाया जाता है। बरसों बाद गाँव के कुएँ के पास जाकर लेखक उसकी स्थापना से संबंधित स्मृतियों में खो जाते हैं–फ्अपने बचपन के संगी कुएँ से मिलने गया। जब मैं बहुत छोटा था तब खेत के बीच रह खोदा गया था। पक्की ईंटों से चुना, पक्की ईंटों का ही गोल चबूतरा। ग्राम–वधुओं और बड़ी–बूढ़ी औरतों तथा पंडितों द्वारा सम्पन्न वह उत्सव–घर से एक कोस दूर उस कुएँ की स्थापना के लिए पद यात्राा, सम्मिलित गान, भीगे चने और हलुवे का प्रसाद–सब एकाएक याद आने लगा।य्5 ग्रामीण लोक–संस्कृति का अटूट अंग उनके लोक–गीत होते हैं और ग्रामीण स्त्रियों द्वारा गाए जाने से और अधिक संगीत–सौन्दर्य से परिपूर्ण हो जाते हैं। लेखक ने इस अनुभूति को अत्यन्त सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है–फ्दूर, जहाँ ताड़ के झुरगुट हैं, वहीं से स्त्रियों का एक समूह इधर आ रहा है। गीत की पतली बारीक आवाजें। हवा में गोल–गोल महीन रंगीन चूड़ियाँ उछाल दी गई हों, मानों.... हवा

www.ignited.in

के हाथों से पिफसलकर चूड़ियाँ टूट जाती हैं और रुक–रुककर गीत की कड़ियाँ मैं सुन पाता हूँ।य6 लोकगीत का एक मुखड़ा उन्होंने अंकित भी किया हुआ है–

फ्माटी का घोड़ा, चामे का लगाम

घोड़ा सारे पानी पी!य7

लेखक ने गाँव के परिवेश को शब्दों के माध्यम से चित्रित करके वहाँ के संस्कारों व संस्कृति की झलक दिखाई है।

वे संस्कृति को विभिन्न विषयों से जोड़ते हुए इसमें सौन्दर्य के पूर्ण अर्थ को प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार–फ्संस्कृति, कला, धर्म और काव्य में तात्विक भेद नहीं है। संस्कृति के मूल में सौन्दर्य और आनंद की भावना निहित है। सौन्दर्य मानव–प्रगति का प्राण है, उसका मर्मस्पन्दन भी है और वही कला का आधार भी हैं। कला का ध्येय सौन्दर्य और सौन्दर्य की परिष्कृति कला है। ये दोनों संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। प्राचीनकाल की संस्कृति में भी कला और सौन्दर्य का उन्मेष पाया जाता है।य8 उन्होंने 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' को व्याख्यायित करते हुए इसे संस्कृति के साथ जोड़ा है। मलयज ने संस्कृति को सत्य माना है और धर्म को शिव तथा कला को सुन्दर घोषित किया है और इन सबका लक्ष्य आनंद को माना है। उनकी यह विचारधारा प्राचीन दर्शन विशेष दृष्टिकोण कायम करके उन्होंने सांस्कृतिक दर्शन प्रस्तुत किया है–फ्यदि काव्य में संस्कृति 'सत्य' है तो कला 'सुन्दर' और धर्म 'शिव'। इसलिए जो कला और सुन्दर है वही शिव भी है। संस्कृति के मूल में सौन्दर्य और कला का लक्ष्य भी सौन्दर्य है, अतएव जो सुन्दर है वह शिव भी है और चूंकि शिव आनंद में चरम विश्राम पाता है अतः सुन्दर का लक्ष्य भी आनन्द है।य9

मलयज के विचारानुसार भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के सन्दर्भ में संकट की चर्चा व चिन्तन करते हुए कुछ लोग यह संकटकालीन सांस्कृतिक–स्थिति यूरोप से कम बताते हैं परन्तु लेखक इस संकट की स्थिति को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं–फ्संकट उस स्थिति को कहते हैं जब स्थापित मूल्यों के आदर्श और उनके प्रचलित व्यवहार के अर्थ में अन्तर और कभी–कभी विरोधाभास आ जाता है, जब सच्चाई, न्याय, प्रेम, करुणा, सेवा, निःस्वार्थता आदि मानवमूल्य केवल आदर्श मात्रा रह जाते हैं। जब इस अन्तर के कारण एक भ्रम की व्यापक स्थिति पैदा हो जाती है और इसलिए जब सद् तथा असद् अंधविश्वास और विवेक, न्याय और क्रूरता आदि में भेद करना कठिन हो जाता है।य10 मलयज भारत की स्थिति को भी ऐसी ही मानते हैं। जो आदर्श आज पुस्तकों में पढ़ाए जाते हैं, वे लुप्त होते जा रहे हैं।

विभिन्न राष्ट्रों की संस्कृति की स्थिति के बारे में चिन्तन करते हुए मलयज मानते हैं कि पश्चिमी संस्कृति में पूर्ण रूप से मूल्यों का विघटन हो गया हैं। वर्तमान समय में सांस्कृतिक दौर का सही रूप से अध्ययन किया जाए तो उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत को अपनी इस स्थिति विशेष को अनदेखा नहीं करना चाहिए। यानी कि भारतीय संस्कृति की स्थिति भी इसी मूल्य–विघटन से प्रभावित हो रही है। फ्पूर्व–पीढ़ी के आलोचक कवि ये माने बैठे हैं कि सभी मूल्य टूट चुके हैं, इसमें कापफी सच्चाई है। विशेषतः ये दो बातों को रेखांकित करती हैं : 1. पश्चिमी संस्कृति में पूर्ण मूल्य–विघटन हो चुका है और यहाँ के कुछ लोग उसी चश्में से यहाँ की स्थिति भी देखते हैं। 2. वर्तमान सांस्कृतिक दौर के सही अध्ययन तथा उससे कोई निष्कर्ष निकालने में भारत देश की अपनी विशेष स्थिति को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।य11

मलयज दो संस्कृतियों पर विचार स्पष्ट करते हुए इस सांस्कृतिक संकट का हल खोजने का प्रयास करते हैं। एशिया में परम्परागत ढंग की संस्कृति है और बीसवीं सदी से पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण विज्ञान की चेतना विकसित होने के बावजूद वहाँ विज्ञान संस्कृति अलग रूप न बना पाई। वह यूरोप की तरह संगठित संश्लिष्ट विचारधारा का रूप ग्रहण नहीं कर सकी। मलयज का मन्तव्य है– भारतीय फ्बुद्धिजीवियों की मानसिक पृष्ठभूमि में यूरोप के चिन्तक वर्ग ;बुद्धिजीवीद्ध की मानसिक थकान–जो 'दो–संस्कृतियों' में कोई 'संवाद' न हो सकने की स्थिति से उत्पन्न एक प्रकार का सर्जनात्मक थिराव और दोनों संस्कृतियों के परस्पर 'टकराने' में कोई नए सर्जनात्मक स्पफुरण हो सकने की आशा पफलीभूत न होने की कुण्ठा ही है–से ग्रस्त होते जा रहे हैं।य12 साहित्य सृजन द्वारा ही इस असंवाद की स्थिति को समाप्त किया जा सकता है। आधुनिक युग में सांस्कृतिक परिवेश के प्रति चिन्तन आवश्यक हो गया है।

भारतीय संस्कृति का आधार ग्रामीण संस्कृति है। परन्तु स्वतन्त्राता प्राप्ति के पश्चात् से नगरीकरण हो जाने के कारण ग्रामीण संस्कृति धूमिल पड़ती जा रही है। गाँवों में तो इसका अंश अभी शेष हैं परन्तु नगरों व महानगरों में यह मूल संस्कृति शहरी मनोवृत्ति के कारण समाप्ति के चरण पर हैं। दिनचर्या के छोटे पहलुओं में भी मौलिक संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं। पशहर में रहकर इस प्रकार एक जटिलता का निर्माण उतना नहीं होता जितना कृत्रिमता का, रूप–विकृति का या छाया के पीछे चलने की वृत्ति का। जैसे भोजन में रोटी का स्थान परेंठा लेने लगता है, दूध का स्थान चाय ;जिसका कारण बहुधा आर्थिक से अधिक एक सामान्य वृत्ति का अनुकरण मात्रा होता है।

यह कृत्रिमता और पफैशन–वृत्ति मध्यवर्ग में अधिक पाई जाती है। यह नहीं कि वे दूसरे वर्गों या श्रेणियों का जीवन जीते हैं, किन्तु तब उनमें वह दृष्टि नहीं रहने पाती जो उनके जीवन की मूल धारा, मूल संस्कृति को पहचाने।य13 इस मूल संस्कृति को पहचाने और उभारने व निखारने के लिए बौद्धिकता के साथ–साथ अपनत्व का सहारा लेना आवश्यक है।

ऐतिहासिक इमारतें, प्राचीन मन्दिर संस्कृति की पहचान है। अपनी यात्राओं के दौरान मलयज– बैजनाथ, गलता जी, शीतला देवी–मन्दिर, झूला देवी–मन्दिर, ताजमहल, आमेर–महल आदि स्थानों पर गए। उन्हें यहाँ देखकर महसूस हुआ कि जो तस्वीर इन स्थानों की जगह–जगह प्रदर्शित की जाती है, वास्तविक रूप में वैसी है नहीं। इनकी दशा इतनी जीर्ण–क्षीण हो गई है कि ये अपनी वास्तविक अवस्था में भी नहीं रहे। उनकी देख–रेख उचित रूप से नहीं हो पाती, जिसके कारण इनके पौराणिक महत्त्व भी लुप्त होते जा रहे हैं। ये स्थान केवल पर्यटकों को लुभाने का और अर्थोपाजन एक माध्यम बनकर रह गए हैं।

संस्कृति की सुरक्षा के लिए सरकार यदि कार्य करती भी है तो जनता उदासीन रहती है। मलयज संस्कृति के प्रति किए जाने वाले इन असपफल प्रयासों और पतनोन्मुखी दशाओं को प्रस्तुत कर यहीं पर पूर्ण विराम नहीं लगाते बल्कि वे इन योजनाओं व कार्यों की असपफलताओं के कारकों पर भी प्रकाश डालते हैं–फ्स्वतन्त्राता प्राप्ति और विशेषकर देश के प्रजातंत्रा होने के बाद देश 'व्यक्तित्व' का पहचानने और उसे जनमानस में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा सरकारी स्तर पर की जा रही है। विज्ञान की उपलब्धियों और अन्य राष्ट्र की विचारधाराओं का पूरा

www.ignited.in

लाभ उठाने की प्रवृत्ति और देश की प्राचीन संस्कृति के सनातन तत्त्वों को सुरक्षित रखने–उससे अपने को बारम्बार आग्रह–पूर्वक जोड़ते रहते–की प्रवृत्ति, ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ सरकारी नीतियों–विशेषकर सांस्कृतिक कार्यक्रमों के क्षेत्रा में कार्य कर रही हैं।

पर जन–मानस में इसकी कोई अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हो रही, नहीं हो सकती, बात यह है कि वे दोनों ही प्रवृत्तियाँ पृथक् रूप से काम में लाई जा रही हैं, या उन्हें आपस में जोड़ने की जो भी चेष्टा है उसमें कल्पनाशीलता और मौलिकता का अभाव है, अतः वह एक नारा बनकर रह जाता है।य1

वे मानते हैं कि इन क्रिया–व्यापारों में सर्जनात्मकता का होना आवश्यक है। देश की सम्पूर्ण सांस्कृतिक विरासत के नए आयाम में प्रक्षेपित करने के लिए कार्यक्रम बनाए जाने चाहिएं और उनको व्यावहारिक रूप भी दिया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. मलयज, मलयज की डायरी–2, पृ. 259
2. वही, मलयज की डायरी–1, पृ. 82
3. मलयज, मलयज की डायरी–1, पृ. 83
4. वही, पृ. 42
5. मलयज, मलयज की डायरी–1, पृ. 535
6. वही, पृ. 550
7. वही, पृ. 551
8. वही, पृ. 118
9. मलयज, मलयज की डायरी–1, पृ. 118
10. वही, मलयज की डायरी–2, पृ. 272
12. मलयज, मलयज की डायरी–2, पृ. 245
13. मलयज, मलयज की डायरी–1, पृ. 340
14. मलयज, मलयज की डायरी–2, पृ. 333